ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 89-92

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

संस्कृति के विशिष्ट आयाम : उत्तराखण्ड के संदर्भ में

डॉ0 निर्दोषिता बिष्ट

सहायक प्राध्यापक– समाजशास्त्र विभाग, रा.स्ना.महा. द्वाराहाट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) भारत

Received-20.10.2023, Revised-26.10.2023, Accepted-30.10.2023 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांशः देवभूमि के नाम से विख्यात उत्तराखण्ड का इतिहास अतीव गौरवशाली रहा है तथा इसकी अतिशय समृद्ध संस्कृति जो विविध विशेषताओं एवं गुणों को अपने में संजोये हुए है। विश्व के कोने से जिज्ञासुओं को अपनी ओर निरन्तर आकर्षित करती रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्डीय सामाजिक–संस्कृति एवं लोकधर्म को सरल एवं संक्षिप्त रूप में उजागर करने का प्रयास किया गया है।

कुंजीभूत शब्द– सामाजिक–संस्कृति, लोकधर्म, उजागर, तराई–भाबर, पितृ सत्तात्मक, संयुक्त परिवार, आच्छादित, प्रचलित।

देव भूमि के नाम से विख्यात उत्तराखण्ड का इतिहास अतीवन गौरवशाली रहा है तथा इसकी अतीव समृद्ध संस्कृति जो विविध विशेषताओं एवं गुणों को अपने में संजोये हुए हैं, विश्व के कोने–कोने से जिज्ञासुओं को अपनी ओर निरन्तर आकर्षित करती रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्डीय सामाजिक संस्कृति एवं लोकधर्म को सरल एवं संक्षिप्त रूप में उजागर करने का प्रयास किया गया है। इस प्रभाग की सांस्कृतिक परम्पराओं के अति प्राचीन होने पर भी उत्तराखण्ड का "उत्तरांचल" नाम सर्वथा नवीन है और पौराणिक साहित्य में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता, अपितु उत्तर भारत के इस हिमवंत क्षेत्र को 'उत्तरपथ' अथवा "उत्तरगिरि" नाम से संबोधित किया गया हैं। पुराणों में इसे मानसखण्ड और केदारखण्ड दो अलग–अलग नामों से जाना जाता है।[1] उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतश्रंखला, दक्षिण में दूर और तराई–भाबर के घने जंगल, पूर्व में सदानीरा काली और पश्चिम में टोंस नदियों की भौगोलिक परिधि में स्थित उत्तरांचल नाम से ज्ञात मध्य हिमालय का प्रदेश एक सांस्कृतिक क्षेत्र माना जाता है।[2] उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मण्डल से सम्बन्धित एक अध्ययन में लिखा गया है कि कुमाऊँनी लोक कला का स्वरूप पूर्णतः धार्मिक और पौराणिक तत्वों से आच्छादित है। इसके परिचय में यदि यह कहा जाये कि इनका सृजन ही धार्मिक आस्थाओं के सौजन्य से हुआ है तो गलत नहीं होगा। इस कला में कुमाऊँ के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक पक्ष की अभिव्यक्ति सम्मिलित है जिससे यहाँ के निवासियों की मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक मनोवृत्ति को समझने में सहायता मिली है।[3]

उत्तराखण्ड में सामाजिक स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ भी समाज की आधारभूत इकाई परिवार है। सामान्यतया परिवार पितृ सत्तात्मक होते हैं। सर्वाधिक आयु का व्यक्ति ही परिवार का मुखिया होता है, घर की सभी महत्वपूर्ण कार्यों में उसकी सम्मति ली जाती है। पूर्व में जहाँ संयुक्त परिवार 20–25 सदस्यों को होना आश्चर्य नहीं माना जाता था[4] वहीं वर्तमान में संयुक्त परिवारों में सदस्यों की संख्या कम होती जा रही है।

उत्तराखण्ड का समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आदिवासी समूहों के साथ साथ मूल समाज में वैश्यों को भी समाहित किये हुए है।[5] समाज में ब्राह्मणों को सर्वाधिक प्रतिष्ठित माना जाता है। उत्तराखण्ड के ब्राह्मण परिवार अनेक जातियों, उपजातियों में विभाजित हैं जिनमें श्रेष्ठता की प्राप्ति हेतु संघर्ष, खान पान, विवाह आदि सम्बन्धित प्रतिबन्ध सदैव से विद्यमान रहे हैं। यद्यपि इनमें अब विभिन्न प्रतिबन्धों में उदारता आ रही है। क्षत्रियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यहाँ दो प्रकार के क्षत्रिय हैं – राजपूत तथा खशिया। राजपूत अपने को खशिया क्षत्रियों से श्रेष्ठ मानते हैं। राजपूत क्षत्रिय बाहर से आये हैं तथा खशिया यहीं के मूल निवासी हैं। उत्तराखण्ड के अधिकांश क्षत्रिय जहाँ पूर्व में सैनिक कार्य करते थे। वहीं अब अधिकांश ने कृषि कार्य को ही जीविकोपार्जन का मुख्य साधन बना लिया है। तीसरे स्थान पर शूद्र आते हैं जो उत्तराखण्ड के सबसे प्राचीन निवासी माने जाते हैं। यह समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग रहा है इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इसके साथ ब्राह्मण तथा क्षत्रिय किसी भी प्रकार का खान–पान, विवाह आदि सम्बन्ध नहीं रखते थे तथा प्राचीन काल में शूद्रों को किसी प्रकार के भी सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। उन्हें मात्र सेवक समझा जाता था।[6] वर्तमान में शिक्षा एवं सामाजिक जागरूकता के कारण शूद्रों की स्थिति में परिवर्तन आया है। उन्हें अनेक धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, तथापि समाज में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत निम्न बनी हुई है। उच्च वर्ग के लोग उनसे खान–पान, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने से परहेज करते हैं। उत्तराखण्ड में अनेक आदिवासी जातियाँ भी हैं। यहाँ के आदिवासियों में भोटान्तिक प्रमुख हैं। भोटान्तिकों को किरातों का वंशज माना जाता है। भोटान्तिकों के अतिरिक्त थारू, बुक्सा आदिवासी जातियों के लोग यहाँ निवास करते हैं जिनकी जीविकोपार्जन के साधन कृषि, पशुपालन एवं व्यापार है। आदिवासियों को समाज में शूद्रों से उच्च स्थान प्राप्त है तथापि सवर्ण जातियाँ इनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में हिचकिचाती हैं। अन्य जातियों में यहाँ जोगी, गुसाई, गिरि, नाथ, भारती, पुरी आदि जातियाँ भी हैं, जिन्हें समाज में उच्च स्तर की जातियों में नहीं गिना जाता है।[7]

उत्तराखण्ड में पेय पदार्थों में चाय सर्वाधिक लोकप्रिय है। आदिवासियों में 'ज्या' एवं 'चकती' मुख्य पेय है। 'ज्या' पानी, नमक, दूध, मक्खन या घी से बना पेय होता है। उत्तराखण्ड की जनता का खान–पान सरल है। मुख्य भोजन गेहूँ, चावल, दाल, सब्जी, दूध, दही, घी और फल हैं। इनके अतिरिक्त मछुवा, झोई (मट्ठा या दही से निर्मित जिसमें गेहूँ या चावल का आटा मिलाया जाता है) बड़ियाँ (उड़द की दाल को पीस कर पेठा या ककड़ी के कुतरे भाग को मिश्रित कर बनाये जाते हैं), डुबुक (भट को या गौहत को पीस कर बनायी दाल), काप (हरी सब्जियों की रसदार सब्जी), खिचड़ी, कौणीं, झंगोरा आदि भी भोजन के रूप में प्रचलित हैं। त्यौहारों और उत्सवों में हलुवा, पूड़ी, पुए, बाड़े, खीर, रायता, कचौड़ी आदि बनायी जाती हैं। बकरे का मांस भी मांसाहारियों में लोकप्रिय है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

सामान्यतया दोपहर के भोजन में दाल–भात को तथा रात को भोजन में रोटी–सब्जी को महत्व दिया जाता है। भोटान्तिकों में दोनों समय मुख्यतया भात–दाल या मांस प्रचलित है, ये सूखा मांस भी बड़े चाव से खाते हैं।[8]

खान–पान से सम्बन्धित अनेक प्रतिबन्ध पूर्व में प्रचलित रहे हैं। सामान्यतया उच्च जाति के लोग अपने से भिन्न जातियों के हाथों का बना भोजन नहीं खाते हैं। विशेष रूप से भात–दाल। सवर्णों के द्वारा शूद्रों द्वारा पकाया अन्न वर्जित माना जाता है परन्तु उनका कच्चा अन्न, दूध, घी आदि ग्रहण किये जा सकते हैं। शूद्रों द्वारा स्पर्श किया पानी उच्च जातियों द्वारा पीना वर्जित माना जाता था। भोजन करते समय यज्ञोपवीत किये व्यक्ति यज्ञोपवीत न किये गये व्यक्तियों के साथ भोजन के लिए नहीं बैठते थे। यज्ञोपवीतधारी बिना सिले कपड़े, धोती पहनकर भोजन करते थे। धोती के अतिरिक्त अन्य कपड़े उतार लेते थे। भोजन सम्बन्धित ये नियम ब्राह्मणों में अधिक प्रचलित थे।[9] क्षत्रिय इन नियमों को नहीं मानते थे। खान–पान के सन्दर्भ में यहाँ अनेक रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। पक्का भोजन चौके से बाहर सभी का बना हुआ खा लिया जाता है किन्तु कच्चा भोजन (दाल–भात) केवल उच्च ब्राह्मण के हाथ से बना हुआ ही खाया जाता है। अपने से निम्न जाति के व्यक्ति को भोजन के चौके में नहीं आने दिया जाता है और न ही उसे अपना हुक्का पीने को दिया जाता है।[10] वर्तमान समय में खान–पान सम्बन्धी नियमों में शिथिलता अवश्य आई है।

उत्तराखण्ड के प्रत्येक भाग में भिन्न–भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने जाते हैं। सामान्यतया पुरूष कोट, धोती, पायजामा, कुर्ता, टोपी, बास्केट, कमीज, चूड़ीदार पायजामा, पगड़ी, मिर्जई, गाती आदि पहनते हैं। स्त्रियाँ घाघरा, आंगड़ि, ओढ़नी, धोती, साड़ी आदि पहनती हैं। विशेष अवसरों पर रंगवाली का पिछोड़ा भी पहना जाता है अँगिया और घाघरे का स्थान अब ब्लाउज और धोती लेते जा रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में कुर्ता–पाजामें का स्थान अब कोट–पतलून लेते जा रहे हैं।[11] वर्तमान में आधुनिक पहनावे का चलन बढ़ गया है। स्त्री एवं पुरुष दोनों आभूषण धारण करते हैं। आभूषण सोना, चांदी, पीतल, ताबें आदि से निर्मित होते हैं। उच्च आर्थिक स्तर वाले लोग सोने–चाँदी के आभूषण धारण करते हैं व गरीब लोग पीतल एवं तांबे के। स्त्रियों द्वारा धारण किये जाने वाले प्रमुख आभूषण हंसुली, नथ, गुलबन्द (गले का हार), मूँगे की माला, चरेऊ की माला, पौंजी (हाथों में पहने जाते हैं), धागुले (कंगन), चूड़ियाँ (कांच, सोने व चांदी की), कनफूल, बिछुए (पैरों में पहने जाते हैं) हैं। पुरूषों द्वारा कानों में कुण्डल, अंगूठियाँ आदि आभूषण धारण किये जाते हैं, जबकि बच्चों द्वारा धागुले तथा हंसुली पहने जाते हैं।

उत्तराखण्ड में लोकनृत्य, लोकगीत, उत्सव, त्यौहार एवं मेले यहाँ के निवासियों के जीवन में हर्षोल्लास उत्पन्न करने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते हैं। यहाँ के निवासी नृत्य संगीत प्रेमी होते हैं। नृत्यों में हुड़का नृत्य, चौपुला नृत्य, छोलिया नृत्य, चांचरी नृत्य प्रसिद्ध है, वहीं झोड़ा, न्वेली, शगुन आँखर, छपेली, हुड़की बौल आदि प्रमुख लोक गीत हैं।

उत्तराखण्ड कृषि प्रधान क्षेत्र है। प्राचीन काल से ही यहाँ गेहूँ, चावल, जौ, मंडुवा, मक्का, सरसों, बाजरा, कौंणी, संगोरा, चुवा, आलू, फल, भांग तथा दालों में उड़द, मसूर, भट, गौहत तथा अनेक मसाले–हल्दी, मिर्च, अदरक आदि की खेती की जाती रही है। पहाड़ी ढलानों पर कृषि के लिए सीढ़ीदार खेतों का निर्माण किया जाता है। सिंचाई की व्यवस्था कम है तथा कृषि वर्षा पर अधिक आधारित है। उत्तराखण्ड के अधिकांश किसानों की स्थिति ऐसी है कि वे जी–तोड़ मेहनत के बाद भी वर्षभर के लिए अन्न नहीं जुटा पाते हैं। इसीलिए कृषि के साथ पशुपालन एक मुख्य व्यवसाय बन गया है। पशुओं में गाय, भैंस, बकरियाँ, भेड़, घोड़ें तथा मौनपालन का कार्य किया जाता है। उद्योगों में रस्सी तथा रिंगाल, ऊन, बर्तन, चाय, फल व सब्जी, जड़ी–बूटी, तारपीन का तेल, रेजिन, खनिज, विद्युत तथा पर्यटन उद्योग प्रमुख हैं।

प्राचीन काल से ही कला के क्षेत्र में उत्तराखण्ड ने अपना विशेष स्थान बनाया है। गढ़वाल के गढ़ चौंतरे शीर्षक से उल्लिखित अपने एक अध्ययन में नैथानी ने निष्कर्ष निकाला है कि प्राचीन काल से ही इस भू–भाग में चत्वर/वेदिका/चौंरा स्थापना कार्य समय–समय पर अनेक तथा सम्मिलित उद्देश्यों से होता आया है।[12] यहाँ के स्थापत्य कला (मंदिर, भवन आदि) मकानों के द्वारों, मूर्तियों, मुद्राओं आदि में कला की झलक प्राप्त होती है। स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा चित्रकला के उत्कृष्ट नमूनों की झलक अल्मोड़ा, श्रीनगर, कझा प्रयाग, बैजनाथ, चम्पावत, बागेश्वर, देव प्रयाग, जागेश्वर, द्वाराहाट आदि स्थानों से प्राप्त होती है। कत्यूरी काल से पूर्व के भवनों में अवशेष लखनपुर, जोशीमठ, लाखामण्डल इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

उत्तराखण्ड की अधिकांश स्थापत्य कला प्रस्तर खण्डों से निर्मित हैं। देव भूमि उत्तराखण्ड के प्राचीन मंदिरों में विद्यमान मूर्तियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ मूर्ति कला किसी समय अपने चरमोत्कर्ष पर रही होगी। जागेश्वर, उखीमठ, कालीमठ, बद्रीनाथ, गोपेश्वर, जोशीमठ, अल्मोड़ा, द्वाराहाट आदि स्थलों पर उपलब्ध शिव, विष्णु, हर, गौरी, पार्वती, गणेश, नंदा, कार्तिकेय, काली, दुर्गा, गरूड़ आदि की मूर्तियाँ 8वीं से 12वीं सदी के मध्य निर्मित हैं।[13] मंदिरों और भवनों के अतिरिक्त अनेक नौले, कुण्ड भी विभिन्न कलाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। इतिहास में इस बात के भी तथ्य मिलते हैं कि गढ़वाल के पंवारवंशीय राजाओं ने चित्रकला को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया। सुलेमान शिकोह के साथ श्यामदास और केहरदास नाम के चित्रकार श्रीनगर में आये थे। उन्होंने श्रीनगर में चित्रकला का प्रचार किया। उनके बाद मंगलराम और मौलाराम ने भी चित्रों का निर्माण किया। इनके द्वारा निर्मित चित्र मुगल शैली से प्रभावित थे। चित्र राजाओं (पवार वंशी) तथा प्रकृति से सम्बन्धित हैं। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र के ब्राह्मण तथा शाह जाति के लोगों में एक विशिष्ट प्रकार की कला भी प्रचलित है जिसे ऐपण या अल्पना कहा जाता है। कुमाऊँ में ऐपण शुभ प्रतीक माना गया है। इसे शुभ अवसरों, त्यौहारों, उत्सवों, विवाह, यज्ञोपवीत तथा नामकरण जैसै शुभअवसरों पर मकानों, मंदिरों, मकानों की देहलीजों पर चित्रित किया जाता है। अल्पना बनाने में गेरूवी मिट्टी तथा चावल के आटे का घोल (विस्वार) का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम गेरूवी मिट्टी से जिस स्थान पर अल्पना बनाना हो को लीप दिया जाता है, ज बवह सूख जाता है उस पर महिलाओं द्वारा विस्वार से महीन रेखाओं द्वारा अनेक आकृतियाँ बनायी जाती हैं। ये आकृतियाँ विभिन्न देवी–देवताओं से सम्बन्धित होती हैं। इन्हें पीठ कहा जाता है,

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

जैसे दुर्गा पीठ, लक्ष्मी पीठ, काली पीठ, शिव पीठ, विष्णु पीठ, गणेश पीठ तथा सरस्वती पीठ आदि। इन देव पीठों के अतिरिक्त विवाह, नामकरण, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के अवसर पर विभिन्न चौकियों को चित्रित किया जाता है।

उत्तराखण्ड की संस्कृति विराट भारतीय संस्कृति की ही एक छोटी सी क्षेत्रीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताऐं तो इसमें विद्यमान हैं ही, इसके अतिरिक्त इसकी कुछ निजी विशेषताऐं भी हैं। सामाजिक विकास की दृष्टि से किसी भी समाज को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – सामान्य वर्ग और अभिजात वर्ग। इस दृष्टि से उत्तराखण्डीय संस्कृति दो रूपों में परिलक्षित होती है – (1) लोक संस्कृति, (2) अभिजात संस्कृति। सम्पूर्ण उत्तराखण्डीय संस्कृति में लोक संस्कृति का ही प्राधान्य है और वह अभिजात संस्कृति पर भी प्रभावी रही है। कुछ साहित्यिक रचनाओं और धार्मिक अनुष्ठानों में आभिजात्यता के दर्शन होते हैं। उत्तराखण्ड के निम्न मध्यम वर्ग ने यहाँ की लोक संस्कृति को जीवित रखा है। ये दास, ढोली, मिरासी, हुड़क्या, औजी, चन्प्य, रणचन्प्या ही यहाँ की संस्कृति के वाहक हैं।[14]

नागपूजा आदि कुछ परम्पराओं को छोड़कर उत्तराखण्ड की संस्कृति पूर्णतः आर्य सभ्यता एवं संस्कृति की ही उत्तरवर्ती संस्कृति है। उत्तराखण्डीय समाज का ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र में विभक्त होना तथा इन जातियों का कई उपजातियों में विभाजन, जाति व्यवस्था के कठोर बन्धन, थारू, बोक्सा, भोटिया और बनरौत जैली आदि जातियों द्वारा अपने भाषा–बोली, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार और विविध सामाजिक परम्पराओं के अपने वैशिष्टय को संजोये रखना, हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान, सिक्ख और ईसाई लोगों का यहाँ के लोक जीवन में रच–बसकर यहीं का हो जाना आदि उत्तराखण्ड की संस्कृति के अनूठे लक्षण हैं। उत्तराखण्डीय लोक जीवन में शकुन महत्व है।

उत्तराखण्ड के लोगों का जीवन–दर्शन नियतिवादी है। यहाँ के लोक गीतों में सर्वत्र भाग्य की प्रबलता को स्वीकार किया गया है। अतः अभावों को झेलते हुए एवं भाग्य की प्रबलता को स्वीकारते हुए भी यहां का सामान्य जन कृत–कर्म के प्रति पूर्णतः जागरूक रहता है, सामान्य जन ज्योतिष, मौसम विज्ञान, कृषि आदि का परम्परात्मक, ज्ञान रखता है। बिजली की चमक, बादलों की गर्जन, आँधी के आगमन और विविध प्रकार के पशु–पक्षियों की बोली आदि से वह अनगत वातावरण और मौसम का पूर्वानुमान लगाने में भी सक्षम हैं।

उत्तराखण्ड प्राचीन काल से ही भारतीय धर्म–भावना का परम–पुनीत क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में धर्म की आधारभूत विविध उपासना–पद्धतियाँ प्रचलित हैं। यह क्षेत्र शैवों, शाक्तों, नाथों और सिद्धों का सिद्धपीठ रहा है और वैष्णवों का साधना स्थल भी। हिन्दुओं के शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, हनुमान, सीता, पार्वती, लक्ष्मी आदि देवी–देवताओं के साथ अन्य स्थानीय और लोक देवी–देवताओं की पूजा यहाँ लोक धर्म की प्रमुख विशेषताऐं हैं। पौराणिक देवी–देवता भी यहाँ लोकानुरूप रूप धारण कर लेते हैं। इस संबंध में शिव और शक्ति के रूप में गौरा–महेश्वर का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। लोकमानस ने अपनी परिस्थितियों के अनुरूप शिव को ग्वाला और शक्ति को ग्वाली के रूप में चित्रित किया है।

प्रकृति पूजा के रूप में वृक्ष, फल, पर्वत, नदी, जल आदि की विविध रूपों में पूजा की जाती है। यक्ष और नाग पूजा भी यहाँ प्रचलित है। खितरपाल या क्षेत्रपाल, भूमिया, नारसिंह आदि की गणना भी यक्ष देवों में ही की जाती है। देवियों में नंदा, काली, गड़देवी, परी, आँचरी, किचरी, माँत्री आदि देवियों की पूजा का विधान है। स्थानीय देवताओं में गोरिया, गंगनाथ, भोलानाथ, हरूसैम, कलुवा, भैरव, सिदुवा, बिदुआ आदि लोक देवता प्रसिद्ध हैं।

उत्तराखण्ड में भूत पूजा भी प्रचलित है जिसका आधार आदिम जन–विश्वास प्रतीत होता है। यहाँ के प्रायः इन सभी देवी–देवताओं के जागर भी लगती है। लोक कला उत्तराखण्डी संस्कृति का प्राण तत्व है। काष्ठकला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं स्थापत्य कला के रूप में कलाओं के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। कलागत प्रतीकों की अपनी ही विशिष्टता है। विविध अवसरों पर ऐपण, बारबूँद, ज्यूँति पट्टा, डिकर आदि रूपों में चित्र कला, हल, दाब, मैं, ठेकी, बिण्डे, पारे, नाली, माणे के रूप में काष्ठ कला तथा भवन निर्माण एवं पच्चीकारी के रूप में वास्तुकला में लोक कलाकार की अदभुत कारीगरी के भव्य दर्शन होते हैं।

यहाँ के लोक जीवन में जादू–टोना और तंत्र–मंत्र का भी बहुत अधिक महत्व है। जादू–टोना और तंत्र–मंत्र वस्तुतः आदि मानव की आदिम प्रवृत्ति के द्योतक हैं। इनमें पारिवारिक बाधाओं, रोगों, शत्रुओं आदि से मुक्ति पाने और सुख–शान्ति अर्जित करने का भाव रहता है। इसके लिए लोक–परम्परा में अनेक प्रकार के अभिचार एवं बलि आदि का विधान रहता है। रखवाली, साँप के काटे का मंत्र, बिच्छू के काटे का मंत्र, भूत–प्रेतों को वश में करने का मंत्र, कमलवायु (पीलिया) झाड़ने का मंत्र, लकवा झाड़ने का मंत्र, पत्थर का हथियार अभिमंत्रित करने का मंत्र, कमर दर्द दूर करने का मंत्र, जोंक (पेट के कीड़े) का मंत्र आदि कई मंत्र, बाधाओं से छुटकारा पाने के लिए लोक जीवन में प्रचलित हैं।

इन तमाम आदि मानव विश्वासों और उपासना–पद्धतियों का विश्लेषण करते हुए इन्हें आधुनिक मनोविज्ञान के निष्कर्षों के साथ जोड़ कर वर्तमान में इनकी उपादेयता और अनुपादेयता सिद्ध करने का प्रयास काफी रोचक होगा।

उत्तराखण्ड समाज के लोक जीवन को समझने के लिए इस समाज से सम्बन्धित अनेक पक्षों का गहन अध्ययन एवं निरीक्षण करना श्रेयष्कर होगा क्योंकि लोक जीवन में समाज के नीति–रिवाजों एवं धार्मिक क्रिया–कलापों के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ, साहित्य, कला एवं पुरातत्व आदि किसी भी समाज के लोकजीवन एवं संस्कृति पर प्रभाव डालते हैं। उत्तराखण्ड केवल हिमालय, पहाड़, वन सम्पदा, नदियों तथा आबादी का एक भूखण्ड ही नहीं है, वरन् असीम आस्था व आध्यात्मिक ज्ञान का कर्मक्षेत्र एवं धर्मक्षेत्र रहा है तथा मानव की तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करने तथा सभ्य सुसंस्कृत समाज की संरचना को बोधगम्य बनाने में महत्वपूर्ण रहा है। पुरातत्व की दृष्टि से मानव उद्भव का केन्द्र सिद्ध होने में उत्तराखण्ड

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

बलवती सम्भावनाएँ संजोए हुए है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बलूनी, दिनेश चन्द्र, "उत्तरांचल का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय" उत्तरांचल : संस्कृति, लोकजीवन, इतिहास एवं पुरातत्व, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, 2001, पृष्ठ 1.
2. जोशी, महेश्वर प्रसाद एवं कु. ललिताप्रभा जोशी, उत्तरांचल में सांस्कृतिक परिवर्तन : एक सैद्धान्तिक अध्ययन, "उत्तरांचल हिमालय : समाज, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व", घनानन्द पाण्डे एवं सोबन सिंह जीना स्मारक ग्रन्थ, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, माल रोड, अल्मोड़ा, 1994, पृ. 1.
3. बैराठी, कृष्णा एवं कुश 'सत्येन्द्र', कुमाऊँ की लोक कला, संस्कृति और परम्परा, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, माल रोड, अल्मोड़ा, 1992, पृष्ठ 'भूमिका'.
4. दुम्का, चन्द्रशेखर एवं घनश्याम जोशी, "उत्तराखण्ड : समाज एवं संस्कृति", उत्तराखण्ड : इतिहास और संस्कृति, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, 1999, पृ. 103.
5. वही.
6. दुम्का, चन्द्रशेखर एवं घनश्याम जोशी, पूर्वोक्त, पृ. 104–105.
7. वही, पृष्ठ 105.
8. वही, पृष्ठ 106.
9. दुम्का, चन्द्रशेखर एवं घनश्याम जोशी, पूर्वोक्त, पृ. 106.
10. बलूनी, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 41.
11. पोखरिया, देव सिंह : 'कुमाऊँनी संस्कृति', लोक संस्कृति के विविध आयाम, मध्य हिमालय के संदर्भ में, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, दि माल, अल्मोड़ा, 1994, पृ. 5.
12. नैथानी, शिव प्रसाद, 'गढ़वाल के गढ़ चौंतरे', उत्तरांचल हिमालय, समाज, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व, सम्पादक महेश्वर प्रसाद जोशी एवं कु. ललिताप्रभा जोशी, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1994, पृष्ठ 101.
13. दुम्का, चन्द्रशेखर एवं घनश्याम जोशी, पूर्वोक्त, पृ. 116.
14. पोखरिया, देव सिंह : पूर्वोक्त, पृ. 2.

*****